International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-10, Issue-2 March-April-2023
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

नव वेदान्त सर्वांग दृष्टिकोण की अवधारणा

1.वैशाली मौर्या, शोधार्थिनी, शिक्षाशास्त्र विभाग, मोनाड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश.

2. प्रोफेसर, डॉ0 महीप मिश्रा, विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, मोनाड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश.

1.1 प्रस्तावना

सामान्यता 'दर्शन' का अभिप्राय मानव के विश्वास से होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इसे मानव के तर्क आधारित विश्वास से भी जाना जाता है। आखिर यह सत्य क्या है? ये कुछ मूलभूत प्रश्न हैं– प्रकृति की वास्तविकता का क्या सम्बन्ध है? यह ब्रह्मण्ड से इसका क्या सम्बन्ध है? दर्शन प्रकृति को व्यापक दृष्टिकोण से देखने का माध्यम है, यह प्रकृति और उसके तत्वों की सार्वभौमिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास है। हम दर्शन को यदि इस आलोक में देखें कि इसके द्वारा मानव स्वयं के बारे में जान सकता है, साथ ही उसका अपने ब्रह्मण्ड से क्या सम्बन्ध है उसे भी जान सकता है।[1]

दार्शनिक दृष्टि से कहा जाए तो मानव तीन प्रकार के वस्तुओं के अस्तित्व के विषय में जानकारी चाहता है – (अ) पदार्थ – भौतिक जगत, (ब) अभौतिक (आत्मिक जगत)– जोकि भौतिक जगत से परे है, (स) भौतिक एवं आत्मिक जगत दर्शन के तीन क्षेत्र इन तीनों का पृथकतापूर्वक अध्ययन करते हैं – (अ) अंतरिक्ष विज्ञान – भौतिक जगत से जुड़ा दर्शन, (ब) प्राकृतिक धर्मशास्त्र – ईश्वर एवं आत्मा का अध्ययन करने वाला दर्शन का क्षेत्र (अलौकिक धर्म विज्ञान), (स) तार्किक दर्शन – वह मानव दर्शन जो कि ब्रह्मण्ड की उत्पत्ति, प्रकृति, मानव के भाग्य का अध्ययन करता है। यदि इन तीनों को एक साथ लाये तो वह 'तत्वमीमांसा' कहलाता है अर्थात् दर्शनशास्त्र की वह शाखा जिसमें अस्तित्व, सत्य,ज्ञान का अध्ययन होता हैं। इसीलिए तत्वमीमांसा के माध्यम से उत्पत्ति, प्रकृति एवं मानव नियति के अध्ययन के पश्चात् मानव प्रयासों का उस नियति को प्राप्त करने का अध्ययन उचित है। यही 'व्यवहारिक दर्शन' कहलाता है। यह तीन प्रकार का है जो कि मानव व्यवहार के तीन लक्ष्यों, सत्यं –शिवं – सुन्दरं की प्राप्ति कराता है। प्रथम प्रकार तर्कविज्ञान है जो कि सही तर्क के नियम बताता है जिससे सत्य को ढूंढने मे मदद मिलती हैं। दूसरा 'सौंदर्यशास्त्र' है जिससे मानव को आनन्द की खोज में सहायता मिलती है तथा सौन्दर्य की नींव का निर्माण भी होता है...। तीसरा, नीतिशास्त्र है जो मानव को अच्छे आचरण करने के मार्ग पर ले जाता है। इन्ही के आधार पर ही मानव जीवन के मूलभूत विचारों का निर्माण होता हैं।[2]

दर्शन विज्ञान के समान ही अपनी परिकल्पनाओं को पुष्ट करने के लिए अनुभव तथा तर्क का सहारा लेता हैं। चूंकि दर्शन का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक होता है जोकि अनुभवातीत है, अतः यह विज्ञान से भी

---

1 डॉ0 पाण्डेय एवं डॉ त्रिपाठी, विश्व के कुछ प्रमुख शिक्षा मनीषी एवं शिक्षा दर्शन, पृ0 165

2 वेदान्त दर्शन 3.3.47, ब्रह्मसिद्धि, 3–106

ज्यादा तर्क पर आधारित है। आलोनात्मक व्याख्या एवं विचारशील अध्ययन उसके आवश्यक साधन हैं। विज्ञान तथ्यो का संभावित एवं त्वरित वर्णन करता है जबकि दर्शनशास्त्र अंतिम लक्ष्य के साथ भौतिकता से परे की भी बातें करता है।[3]

दर्शन, किसी एक विशेष दृष्टिकोण के बजाए जीवन के कछ दुरूह प्रश्नो का शुद्व, सतर्क एवं अनुशसित अध्ययन है। दर्शन पूर्णता पर चिंतन करता है, इसलिए मनुष्य की संसार में स्थिति, मानव जीवन का निहितार्थ, अंतिम लक्ष्य प्राप्ति हेतु मानव प्रयासों की दिशा और मानव जीवन के अनुकूल दशाओं को समझने में सहायक है। व्यापक सन्दर्भो में देखा जाए तो दर्शन वस्तु, पदार्थ, प्रकृति, मानव की उत्पत्ति तथा अंतिक परिणति को परखने की दृष्टि दर्शनशास्त्र से मिलती है। विभिन्न दृष्टिकोण विभिन्न विचारको एवं विभिन्न वस्तुओं की ही देन है।[4]

भारतीय सन्दर्भ में यद्यपि दार्शनिक कारणों एवं परिणामों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों ही जगत में इस आधार पर समानता मिलती हैं। किन्तु दार्शनिक जिज्ञासा तथा दार्शनिक विचारधाराओं के विकास की प्रकिया में भिन्नता प्राप्त होती हैं। भारतीय दर्शन तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान आदि का बोध तो कराता है किन्तु इनका एक अलग विषय के रूप में अध्ययन नहीं होता हैं। भारतीय दार्शनिकों द्वारा सभी समस्याओं/कारणों का तत्वमींमासा, नीतिशास्त्र, मनोवैज्ञानिक या तत्वज्ञान जैसे संभावित उपागमों द्वारा अध्ययन किया गया है। भारतीय दर्शन की परम्परा में संश्लेषित दृष्टिकोण मिलता हैं। भारतीय दर्शन के इसी सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण ने बहुत से वैज्ञानिक विषयों को बहुत ही सुबोध बना दिया था जिन्हें आजकल दर्शन से अलग विषय करने की प्रकिया जारी है।[5]

भारतीय दर्शन की एक मुख्य विशेषता जोकि पाश्चात्य जगत से उसे अलग करता है, वह है कि भारतीय दर्शन विभिन्न प्रकार के वैचारिक मतभेदों के बावजूद उनमे एक निश्चित समानता भी मिलती हैं। भारतीय दर्शन मे यह समानता वस्तुतः उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण में समानता के कारण परिलक्षित होती है। सभी विचारधारायें इस निष्कर्ष पर पहुंचती हैं कि दर्शन एक व्यवहारिक आवश्यकता है तथा जीवन का सर्वोत्तम रूप से आनन्द प्राप्त करने के लिए यह अपरिहार्य हैं। भारतीय दर्शन का उदे्श्य जीवन को बौद्विक रूप से समृद्व बनाना तथा मानव जीवन को समर्थ, दूरदर्शी एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करना हैं। ज्ञातव्य है कि पाश्चात्य दर्शन का उदे्श्य लोगों की बौद्विक जिज्ञासा शान्त करने तक ही सीमित हैं। भारतीय दर्शन का प्रभाव इस कारण ज्यादा है कि सभी दार्शनिक विचारधाराएँ जीवन से अज्ञानता को हटाने की बात करती है, जो कि सभी बुराइयों की जड़ है। इसके साथ ही भारतीय दर्शन प्रकृति के रहस्यों का अध्ययन भी करता है ताकि लोगों को उनके जीवन की दुश्वारियों से मुक्ति मिल सके।[6]

---

3 जगदीश चन्द्र मिश्र, भारतीय दर्शन, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ 580

4 मुण्डकोपनिषद शंकरभाष्य, 1.1

5 आध्यात्मोपनिषद, 63

6 पंचदशी : 1.15, 1.16, उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 360

1.2 मानव मूल्यों की सर्वांग अवधारणा

एल्डस हक्सले के अनुसार ''मानव अपने जीवन दर्शन के हिसाब से जीता है, उसका संसार के प्रति भी एक विचार होता हैं। यह विचारहीन मनुष्य के लिए भी सत्य हैं। बिना किसी तत्वज्ञान के जीवन असम्भव हैं। हमारे विकल्प, किसी भी प्रकार का या बिना किसी प्रकार का तत्वज्ञान में से नहीं है अपितु हमें हमेशा अच्छा और बुरा तत्वज्ञान में से एक का चयन करना हैं।'' दर्शन की आवश्यकता मानव के तार्किक स्वभाव की परिणति है। वह अपने तर्क से यह जानना चाहता है कि उसका मालिक कौन है? जानवरों के विपरीत मानव चेतनाशील होकर किसी कार्य को (स्वयं को केन्द्र में रखकर) करता है तथा इस बात का ध्यान रखता है कि तात्कालिक के साथ इसके दूरगामी परिणाम क्या होगें? उद्देश्यपूर्ण जीवन विचार को इंगित करते हैं, विचार ही मानव के जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है।[7] यह जीवन कहाँ से मिला है? और इसे कहाँ तक जाना है? जीवन का सार जानने हेतु कुछ आंतरिक प्रश्न हमेशा उठते रहते है। सैंकड़ों वर्षो से करोड़ों लोगों का विश्वास है कि सृष्टि या इस ब्रह्मण्ड की अपनी व्यवस्था है जिसका मानव के लिए विशेष अर्थ हैं। ईश्वर, मानव जीवन का ध्यान रखता है तथा उसके जीवन की घटनाओं को निर्देशित भी करता हैं।[8]

यद्यपि वैज्ञानिक परम्परा का चिन्तन यह सन्देह उत्पन्न करता है कि ईश्वर हमारे भाग्य को नियन्त्रित कर सकता है या क्या कुछ अदृश्य शक्तियाँ हमारी नियति को निश्चित करती हैं? किसी हद तक निराशावादी रूप से देखें तो कुछ लोगों का मानना है कि मानव की अन्तिम नियति को जानना मानवीय शक्ति से परे है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ईश्वर का संसार की घटनाओं एवं मनुष्य के आचरण पर व्यक्तिगत रूप से नियन्त्रण रहता है। कुछ अन्य लोगों का विचार है कि यदि मानव स्वभाव का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि स्वयं मानव के माध्यम से ही इस संसार में पवित्र उद्देश्य कार्य कर रहे हैं।[9] मानव स्वभाव का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसकी दो तरह की आवश्यकतायें—भौतिक आवश्यकता एवं आध्यात्मिक आवश्यकता। नैसर्गिक रू॰ से जन्म के साथ ही वह अपनी इच्छाओं की संतुष्टि के लिए कर्म करता हैं। जो कुछ भी मनुष्य की इच्छाओं को संतुष्ट करता है, वही मूल्य बन जाता है।[10] इसलिए हमारे आचरण हमारे मूल्यों द्वारा ही प्रेरित होते हैं। दूसरे शब्दों में हम अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं। जैसे इच्छायें भौतिक एवं अभौतिक होती हैं, उसी प्रकार मूल्य की प्रकृति भी भौतिक एवं अभौतिक होती हैं, हमें भोजन, वस्त्र एवं मकान चाहिए, हम इन्हे महत्व देते हैं क्योकि इनसे हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती हैं। बहुत से लोगो को सत्य, सौन्दर्य एवं अच्छाई जैसे मूल्य अच्छे लगते हैं, और वे इन्ही आध्यात्मिक (अभौतिक) मूल्यों से लगाव रखते हैं। हम जिस चीज को महत्व देते हैं, उसे प्राप्त करते हैं। वस्तुतः ''मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्च के वे मानदण्ड हैं जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे

---

7 जगदीश चन्द्र मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 569, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

8 श्वेताश्वरोपनिषद, 4.9.10

9 *उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृ0 348*

10 वही, पृ, 348

कायम रखते है।'' अतः हम कह सकते हैं कि चेतन या अचेतन रूप से जो कुछ भी हमारे जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, हमारे आचरण को प्रभावित करता हैं। फिर हमारे जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु क्या है? सबसे ज्यादा अच्छाई क्या है? हमारे जीवन की अंतिम सार्थकता क्या है? यह दर्शन प्रश्न हैं।[11] इतिहास के प्रारम्भ से ही हमें दार्शनिकों ने अपने सत्य एवं वास्तविकता की अवधारणा के अनुरूप जीवन का अंतिम लक्ष्य बताया है। एपिक्युरियन्स के लिए यह जीवन का आनन्द था, प्लेटो, सुकरात और अरस्तु उच्चतम बिन्दु प्रसन्नता के रूप में देखते हैं जिससे मनुष्य की तार्किक शक्तियों के अभ्यास से पाया जा सकता है, आधुनिक नीतिशास्त्रवादी टी.एच ग्रीन सर्वोच्च लक्ष्य स्वयं को जानने से मानते है।[12] पुनः मूल्यों का निर्माण मानव स्वभाव के दृष्टिकोण पर आधारित है। एपिक्युरियन्स मानव की संवेदनशील प्रकृति को निर्धारित करते है, प्लेटों एवं अरस्तु मानव की तर्कशक्ति को जबकि टी.एच. ग्रीन मानव के प्रभावकारी एवं सम्भाव्य शक्ति को आधार मानते हैं।[13]

हमारा उद्देश्य जीवन का उत्कृष्ट सत्य जानना यहाँ पर नहीं है अपितु यह स्पष्ट होता है कि यदि किसी भी तथ्य में अत्यधिक, निश्चित एवं अंतिम विश्वास होता है तो दार्शनिक उसे जीने का प्रयास करते हैं। अपने विश्वास के अनुरूप वे सिर्फ स्वयं ही नही जीना चाहते अपितु चाहते हैं कि अन्य भी उनके तर्कों को माने एवं उनका अनुसरण करें। कैसे यह सम्भव होता है? इसका समाधान मानव स्वभाव है।''मानव के स्वभाव की निश्चित मात्रा नहीं है, यह परिवर्तनशील है, यह बहुत ही लचीला है, बहुत ही ग्रहणशील है... धर्म भी यह मानता है कि मानव स्वभाव को परिवर्तित किया जा सकता हैं। यदि मानव स्वभाव में परिवर्तन लाना सम्भव नहीं होता तो शिक्षा को भी कोई अवसर नहीं होता है।'' अतः शिक्षा के विशद एवं व्यापक अर्थ को जानना यहाँ आवश्यक हैं।[14] शिक्षा से हमें मानव मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं का ज्ञान होता है। डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार,''शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशलों का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है।[15] उसे शिक्षित व्यक्ति को मूल्यों का विचार भी प्रदान करना हैं। वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक हैं। अतः जिस समुदाय में वे रहते हैं, उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व हैं।''[16]

आज की शिक्षा प्रणाली इतनी दूषित हो गयी है कि इसमें मूल्यों का स्थान नहीं रहा है। भारतीय शिक्षा के इसी दोष की ओर संकेत करते हुए सन् 1952 में कानपुर में हुए अखिल भारतीय कांग्रेस के 40वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए भारत कोकिला सरोजिनी नायडू ने कहा था–''हमारी शिक्षा ने हमें उपयुक्त मानसिक मूल्यों एवं पृष्ठभूमि से रहित कर दिया है तथा आत्म–प्रकाशन की अधिकारपूर्ण शैली को खोजने में

---

11 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 353
12 बृहदारण्यकोपनिषद–3.9.28
13 जगदीश चन्द्र मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 521, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
14 ब्रह्मसूत्रः शंकरभाष्यः 1.1.4, 1.3.19
15 पाणिनि अष्टाध्यायी, 4–3–110 पृ0
16 उमेश मिश्र, बैंक ग्राउण्ड आफ बादरायण सूत्र, कल्याण कल्पत गोरखपुर, पृ0 12

जो सच्ची लगन एवं मौलिकता की अपेक्षा है, उससे भी वंचित कर दिया है।''उस परिभाषा में शैली (मोड) शब्द पर विचार आवश्यक है। इसी को प्रसिद्व चिन्तक व्हाइटहेड ने भी कहा है। इनका भी मानना है कि शिक्षा से शैली का निर्माण होना चाहिए। यह शैली क्या है? इस प्रश्न का उत्तर व्हाइटहेड के निम्न कथन में स्पष्ट है–

''अपने सर्वोत्तम अर्थ में शैली ही एक शिक्षित मस्तिष्क की अन्तिम प्राप्ति है। यह सर्वाधिक उपयोगी भी हैं। यह पूर्वदृष्ट लक्ष्य की सरल, सार्थक एवं प्रत्यक्ष प्राप्ति की प्रशंसा पर आधारित सौन्दर्यानुभूति हैं। कला में शैली, साहित्य में शैली, विज्ञान में शैली तथा तर्क में शैली – व्यर्थता में घृणा करती है (अर्थात् शक्ति के अपव्यय से हमें बचाती हैं)'शैली 'मन की चरम नैतिकता हैं। शैली से आप अपने लक्ष्य को और केवल लक्ष्य को ही प्राप्त कर सकते हैं।'' इस प्रकार, ''शिक्षा ऐसी क्रिया अथवा प्रयास है, जिसमें मानव समाज के अधिक परिपक्व लोग, न्यून परिपक्व व्यक्तियों की अधिकाधिक परिपक्वता के लिए प्रयास करते हैं तथा इस प्रकार मानव जीवन को अच्छा बनाने में योगदान करते हैं।'' वस्तुतः शिक्षा एक व्यवहारिक उपागम हैं।[17] यह प्रश्न उठता है कि स्वयं एवं अन्य को शिक्षित करने के लिए क्या करना चाहिए?

इस संसार में व्यक्ति का प्रत्येक प्रयास इस दिशा की ओर निर्देशित होता है कि उसकी प्रकृति की आवश्कतायें पूरी होती रहें। क्योंकि व्यक्ति मूलरूप से आध्यात्मिक है, इसलिए वह प्राकृतिक रूप से अपनी सत्य प्रकृति को जानने की इच्छा रखता है, तथा यही आत्मज्ञान हैं।[18] यह उसके लिए सर्वोच्च मूल्य है तथा वह इसे धर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यक्ति को इस मूल प्रकृति को इसी संसार में प्राप्त करना होता है तथा इसी सांसारिक रूप में ही प्राप्त करना होता है, वह इस भौतिक जीवन की अन्य आवश्यकताओं की अनदेखी नही कर सकता, वह मानव प्रकृति के अन्य पक्षों की अनदेखी नही कर सकता। उसके पास एक शरीर है तथा इसे सही अवस्था में रखा जाना आवश्यक है, ताकि यह उसके मूल स्वरूप की प्राप्ति मे उसकी सहायता कर सके तथा किसी प्रकार अवरोध न बन जाये।[19] क्योंकि शरीर को भोजन तथा अन्य वस्तुओं द्वारा जीवित रखे जाने की आवश्यकता होती है, इसलिए व्यक्ति को जीवन यापन के लिए व्यवसाय सीखना होता है ताकि वह आत्मनिर्भर बन सके तथा समाज पर बोझ न बने। क्योंकि व्यक्ति की प्रकृति सामाजिक होती हैं तथा उसके कार्यो का व्यक्तिगत तथा सामाजिक महत्व होता है, इसलिए उसे इस प्रकार का चरित्र विकसित करना होता है जो नैतिकता के मापदंड पर सही उतरें। क्योंकि उसमे सौंदर्य बोध की प्रकृति होती है, इसलिए वह सुन्दर वस्तुओं का आनंद लेना चाहता है तथा यदि संभव हो तो वह स्वय भी कलाकृतियाँ बनाना चाहता है। क्योंकि उसकी प्रकृति भावनात्मक होती है जो दूसरे लिंग के सदस्य के साथ पूरी होती है, इसलिए उसे परिवार की आवश्यकता होती है। क्योंकि उसके पास बुद्विं होती है तथा इसे सही मार्ग पर चलाये रखने की आवश्यकता होती है ताकि वह इस संसार मे सभी चीजे सतोंषजनक रूप से चलाये रखे, इसके लिए उसे

---

17 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृ0 346

18 जगदीश चन्द्र मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ0 554, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

19 मुण्डकोपनिषद

ज्ञान उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि व्यक्ति के पास विचार करने की शाक्ति होती है तथा इस शाक्ति से उसे दैनिक जीवन की सामान्य रूचियों से ऊपर उठने की आवश्यकता होती है ताकि वह स्वयं को ब्रह्मांड का एक भाग महसूस कर सके, उसे किसी प्रकार के दर्शन या धर्म अथवा दोनों की आवश्यकता होती है। इन सब मूल्यों की आवश्यकता व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए होती है तथा इसमें व्यक्ति के अधिगम व जीवन के लक्ष्य निहित होते हैं। कोई व्यक्ति इसके बिना नही जी सकता, तथा इसलिए इन्हे व्यावहारिक लक्ष्य माना जा सकता है। सभ्यता के आंरभ से, प्राचीन ऋषियों से लेकर आधुनिक दार्शनिकों तक, सभी लोग जीवन के लक्ष्यों को मान्यता देते है। अब हम इन लक्ष्यो पर चर्चा करेगे तथा देखेगें की इन्हे किस प्रकार से प्राचीन काल में माना जाता था तथा हमारे आधुनिक दार्शनिक उन्हें किस प्रकार से पुनर्जीवित करना चाहते थे, जिससे हमारे आदर्शवादी विचार की व्यापकता प्रमाणित होगी। अर्थात सर्वांग अवधारणा यह है कि हमारे आचरण मानव मूल्यों से ही प्रेरित होते हैं।[20]

1.3 शिक्षा व्यवस्था में समग्र दृष्टिकोण

भारत में दर्शन का विचार पश्चिमी दार्शनिक व्यवस्था के विचार से भिन्न है। इसके मूल अर्थ में, जिसमें दर्शन को बुद्धिमानी के प्रेम के रूप में जाना जाता है, को संस्कृत के शब्द ‘जिज्ञासा’ के निकट मानना चाहिए, जिसका अर्थ ‘जानने की इच्छा’ होता है यदि इसका अर्थ ‘बुद्धिमान होने की इच्छा’नहीं है। यदि हम दर्शन को हमारे ज्ञान के माध्यम की परीक्षा के रूप, अर्थात ज्ञान मीमांसा के रूप में लेते हैं या कांट के अनुसार इसे मानव ज्ञान की सीमाओं में प्रवेश के रूप में लेते है तो भारतीय दर्शन इससे एक कदम आगे जाकर इसमें स्पष्ट मस्तिष्क व शुद्ध मन के व्यक्तियो के अनुभव को भी जोड़ता है तथा उन्हें सत्य के सामान्य दर्शक के रूप मे मान्यता देता है।[21]

भारतीय दर्शन मे सभी दार्शनिक विचारो को सम्मिलित किया गया है चाहे वे पुरातन हो या आधुनिक, हिदुं हो या अन्य, ईश्वर मे विश्वास रखते हो या नही भारतीय दर्शन को हिंदु दर्शन के समकक्ष नही समझना चाहिए यदि हिंदु शब्द का प्रयोग भारतीय शब्द के रूप में न किया जाये। माधवाचार्य के ‘सर्वदर्शन संग्रह’, जो बहुत पहले लिखा गया था, में हम पाते हैं कि उसमें सभी प्रकार के दर्शनों को सम्मिलित किया गया है जैसे अनीश्वरवादी तथा सासांरिक व्यवस्था जैसे चार्वाक, तथा अपरंपरागत विचारक जैसे बुद्ध व जैन, तथा इन सबको परंपरागत हिंदु विचारकों के समान महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।[22]

सभी प्रकार के विचारों को समाहित करने के गुण के कारण भारतीय दर्शन सत्य को प्राप्त करने में सभी प्रकार के प्रयास करता है। हालांकि भारतीय दर्शन में विभिन्न प्रकार के मत है लेकिन उनमे से प्रत्येक ने दूसरे के मत को जाना तथा अपने सिद्धान्त को तब तक नहीं बनाया जब तक इसने दूसरों को नहीं जान लिया। इस भावना के कारण दार्शनिक वार्ता की एक विशेष विधि उत्पन्न हुई। किसी दार्शनिक को सबसे

---

20 श्रीरामानुज भाष्य, 4.4.2

21 सदानन्द, वेदान्तसार–14.6

22 ब्रह्मसूत्र, 1.4.2

पहले अपने विरोधी के विचारों को कहना होता था तथा इस प्रकार की वार्ता को पूर्व पक्ष कहा जाता था। इसके बाद में वह अपने विरोधी के विचारों का खंडन करता था। अंत में वह दार्शनिक अपने कथन को कहता था तथा इसका प्रमाण देता था ; इस भाग को बाद वाला विचार या उत्तर पक्ष या निष्कर्ष कहते थे जिसके लिए अन्य नाम सिद्धान्त हैं।[23]

मोक्ष की प्राप्ति का ध्येय अंतिम आदर्श है तथा इसे प्राप्त करने के लिए जिस भावना की आवश्यकता है, यह दो तत्व भारतीय दर्शन मे पाये जाते है। जैसा भावना की आवश्यकता है, यह दो तत्व भारतीय दर्शन मे पाये जाते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका हैं कि भारत में दर्शन को न तो नैतिक शास्त्र या नैतिकता से कनिष्ठ समझा गया, न ही यह बौद्धिक व्यायाम था। वास्तव में, यह दोनों को ही अपने भीतर समाहित करता है लेकिन साथ यह उनसे परे भी जाता है। न तो नैतिक शास्त्र न ही तर्क इसे प्राप्त कर सकते हैं, हालांकि ये दोनों किसी व्यक्ति को इसकी प्राप्ति में सहायता प्रदान करते हैं। वे किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के साधन हैं तथा स्वयं मे ही साध्य नहीं हैं। हिरियाना से तर्क तथा नैतिक शास्त्र की उपमा को लेते हुए हम कह सकते हैं कि ये दोनों दो पंखों के समान हैं जिनके आधार पर आत्मा आध्यात्मिक उड़ान को पूरा करती है। इनकी सहायता से प्राप्त होने वाले ध्येय को एक ओर ज्ञान या प्रकाशन कहा जा सकता है जो एक बौद्धिक विश्वास है तथा जिसने व्यावहारिक अनुभव को पका दिया है तथा दूसरी ओर यह वैराग्य या आत्म–सन्यास है।[24]

सैद्धान्तिक पक्ष में, वेदांत परम तथा आस्तिकता की जीत का पक्ष लेता है क्योंकि विभिन्न वेदांतिक मत इन दो वर्गो में बांटे जा सकते हैं। इसमें से एक अद्वैतवाद है तथा दूसरा द्वैतवाद लेकिन यह बाद वाला भी एक प्रकार से अद्वैतवादी है क्योंकि इसका विश्वास है कि सभी वस्तुयें अंतिम रूप से ईश्वर पर निर्भर हैं। व्यवहारिक पक्ष में भी, वेदांत ने जीवन के सकारात्मक तथा व्यावहारिक आदर्श की आपूर्ति कर इसे विजयी बनाया है। सर्वोच्च भलाई का वेदांतिक विचार भी ब्रह्मांडीय उद्देश्य को स्वीकार करता है चाहे इस उद्देश्य को ईश्वर के द्वारा बनाया गया हो या यह प्रकृति में स्वयं ही स्थित हो, तथा जिसकी प्राप्ति के लिए सभी चीजें चेतन या अचेतन रूप से गति करती हैं।[25]

1.4 निष्कर्ष

वस्तुतः इस प्रत्यक्ष अनुभव पर इस प्रकार का जोर देना ही धर्म के भारतीय दर्शन को पश्चिमी मतों से विशिष्ट करता हैं। यह प्रत्यक्ष अनुभव वह स्त्रोत है जिसमें से सभी प्रकार के भारतीय मत निकलते हैं तथा यह भारत मे दर्शन का स्वीकृत आधार है। यह प्रत्यक्ष अनुभव इंद्रियों द्वारा या बुद्धि द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अनुभवातीत है। चेतना के पैमाने पर यह चतुर्थ अवस्था से संबंधित है जो अनुभवातीत अवस्था है तथा जिसे चेतना की आंतरिक प्रकृति कहा जा सकता है। हालांकि यह सभी में उपस्थित होती है लेकिन

23 एल0के0 ओड0, शिक्षा की समाजशास्त्रीय और दार्शनिक पीठिका। नई दिल्ली, मैकमिलन, पृ0सं0 1

24 बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, पृ0 92

25 लाइफ : आफ श्री अरविन्दो, पृ0 11

व्यक्ति इसे अपने अज्ञान की अवस्था में पहचान नहीं पाता। सभी दार्शनिक इस बात को कहते हैं।[26] कि इस अवस्था को ही प्राप्त करना उद्देश्य है। इससे भारतीय दर्शन तथा भारतीय धर्म में स्पष्ट रूप से संबंध गोचर होता है। दूसरे शब्दों में, यहां धर्म दर्शन से अलग नहीं है, बल्कि यहां दर्शन अंतिम सत्य में तर्क को समाहित करता है जिसे अनुभव में प्राप्त करता है। लेकिन किसी हिंदु व्यक्ति के लिए धर्म विश्वास के विचार का प्रतीक नहीं है, न ही इसमें किसी प्रकार के संस्कार या अभ्यास हैं। वरन् यह अनुभूति है जिसे हम प्रकाशन तथा अनुभव कह सकते हैं।[27]

भारत में शिक्षा को सदैव से ही प्रकाशन तथा शक्ति के स्त्रोत के रूप में पहचाना गया है जो हमारी प्रकृति को परिवर्तित तथा श्रेष्ठ बनाता है तथा जिसके लिए वह हमारी भौतिक, मानसिक, बौद्विक व आध्यात्मिक शक्तियों तथा योग्यताओं को प्रगतिशील विकास तथा सही विकास के पथ पर अग्रसर करता है। इस प्रकार की परिभाषा हमारे आदर्शवादी दर्शन के अनुसार है जो प्रत्येक आत्मा को प्रकृति में दैवीय समझता है।[28] शिक्षा द्वारा प्रदान किये गये प्रकाशन से हम माया से बाहर आते हैं, कठिनाईयां समाप्त करते हैं तथा शिक्षा हमें जीवन के सच्चे मूल्य से परिचित कराती है। वह व्यक्ति जिसके पास शिक्षा का प्रकाश नहीं है, उसे वास्तव में अंधा ही कहा जा सकता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था प्राचीनकाल से ही समग्र और सुलभ रही है।

---

26 तैत्तरीयोपनिषद, 2.1, शांकरभाष्य, 2.3 1.6–17

27 एल0के0 ओड0, शिक्षा की समाजशास्त्रीय और दार्शनिक पीठिका। नई दिल्ली, मैकमिलन, पृ0सं0 1

28 राम सकल पाण्डेय, शिक्षादर्शन आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, द्वितीय संस्करण, पृ0सं0 73

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा चन्द्रधर, भारतीय दर्शन, आलोचना और अनुशीलन, प्रकाशक, नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, जैन, दिल्ली, 1989
2. जार्ज टामस वहाइट पैट्रिक दर्शनशास्त्र का परिचय, प्रकाशक, हरियाणा साहित्य अकादमी,चण्डीगढ़, 1990
3. डेल कारनेगी लोक व्यवहार, प्रकाशक, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., 2006
4. प्रकाश दया रस्तौगी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, प्रकाशक, साधना प्रकाशन मेरठ, 2009
5. लाल बसन्त, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, प्रकाशक, नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल जैन बनारसीदास, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2005
6. गुप्ता, एम0एल0, समाजशास्त्र,प्रकाशक, साहित्य भवन पब्लिकेशनस, आगरा, 2001
7. या. मसीह पाश्चात्य दर्शन का समीक्षात्मक इतिहास, प्रकाशक, नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, जैन, दिल्ली पंचम संस्करण 1994
8. विजय, चन्द्र महात्मा गांधी का धर्म दर्शन, प्रकाशक, जानकी प्रकाशन, पटना, बिहार, 1985
9. वर्मा वेद प्रकाश, नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, प्रकाशक, अलाइड पब्लिशिंग लि. नई दिल्ली, 1994
10. श्री श्रीमद् ए0सी0भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, प्रकाशक, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुबई, 2005
11. राधाकृष्ण सर्वपल्ली, आधुनिक युग में धर्म, प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 दिल्ली, 1968
12. मणि स्यमन्तक मिश्र, धर्म क्षेत्र कर्म क्षेत्र (श्रीमद्भगवद्गीता), प्रकाशक, प्रबोधा शिक्षा समिति, गोरखपुर, 2000
13. नारायण हृदय मिश्र, पाश्चात्य दर्शन की समस्याएँ ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा (द्वितीय संस्करण, 1999)
14. नारायण हृदय मिश्र, समाज दर्शन सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचन, प्रकाशक, षेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, शष्टम् संस्करण 1997
15. त्रिपाठी, लालबचन : ,"मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विधियाँ", ,एच0पी0भार्गव बुक हाउस, कचहरी घाट, आगरा–282005, 2012
16. उपाध्याय, दीनदयाल : नवम् संस्करण, "एकात्म मानववाद", जागृति प्रकाशन,नोएडा–201301, 2012
17. सुधीर सेव (इड), रवीन्द्रनाथ टैगोर, ऑन रूररल रिकंसट्रक्शन, शान्तिनिकेतन– विश्वभारती, 1943
18. टैगोर रवीन्द्रनाथ टैगोर :– "साधना" डिलिवर्ड एट द हावर्ड युनिवर्सिटी, यू.एस.ए. मैकमिलन कम्पनी न्यूयार्क– 1912–13

19. उपाध्याय, दीनदयाल : चतुर्थ संस्करण, "भारतीय अर्थ–नीति, विकास की एक दिशा", लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन राजेन्द्रनगर,लखनऊ–226004, 2008

20. टैगोर रवीन्द्रनाथ :– "नेशनलिज्म" लेक्चर्स डिलीवर्ड एट जापान एण्ड द यूनाइटेड स्टेट्स 1916–17 मैकमिलन कम्पनी।

21. वालिया, जे0एस0 : "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक," अहम् पाल पब्लिशर्ज, गोपाल नगर, जालन्धर शहर (पंजाब), 2011